

महाराणा प्रताप सिंह

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

(2025 की दीवानी अपील सं. 5497)

23 अप्रैल 2025

[दीपांकर दत्ता*¹ एवं प्रशांत कुमार मिश्रा, न्यायमूर्तिगण]

विचार के लिए मुद्दा

क्या अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने में सम्यक प्रक्रिया का पालन किया गया था और क्या तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर उसकी सेवा से बर्खास्तगी न्यायोचित है; क्या मामले के तथ्यों, साक्ष्यों, साक्षियों और परिस्थितियों के आलोक में, आपराधिक कार्यवाही के आरोप विभागीय कार्यवाही के आरोपों के सारतः समान हैं, जिससे कि आपराधिक मामले में दोषमुक्ति अनुशासनात्मक कार्यवाही के निष्कर्षों को कमजोर बना देगी।

निर्णय-सार

दीवानी सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1930 – नियम 55 – बिहार और उड़ीसा अधीनस्थ सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1935 – नियम 2 से संलग्न टिप्पणी 1 – बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 2005 – अपीलार्थी की नियुक्ति अपराध अनुसंधान विभाग (सी.आई.डी.) के श्वान दस्ता में सिपाही के रूप में की गई थी – अपीलार्थी के विरुद्ध अनुशासनात्मक और आपराधिक कार्यवाहियां शुरू की गई – अनुशासनात्मक कार्यवाही में, जाँच अधिकारी ने अपीलार्थी को सभी चार आरोपों

का दोषी पाया – परिणामस्वरूप, ज्ञापन दिनांक 21.06.1996 द्वारा अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया – जबकि, आपराधिक कार्यवाही में, अपीलीय न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया – सेवा से बर्खास्तगी से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने रिट याचिका दायर की – उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने बर्खास्तगी आदेश दिनांक 21.06.1996 को अभिखंडित कर दिया – हालाँकि, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के निर्णय को अपास्त कर दिया और यह धारित किया कि बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं था – सटीकता:

अभिनिर्धारित: आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्त होने के पश्चात अपीलार्थी को आरोप संख्या 1 का दोषी पाए जाने का निष्कर्ष कायम नहीं रखा जा सकता, क्योंकि उक्त कार्यवाही में सारतः समान या समरूप आरोप, साक्ष्य, साक्षी और परिस्थितियाँ शामिल थीं – वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण करने के अधिकार से वंचित करने के कारण अपीलार्थी को प्रतिकूल प्रभाव पहुँचा है, जिसे तीन कारणों से प्रति-परीक्षण का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए था: प्रथम, यदि अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण की गई होती, विशेष रूप से व्यक्तिगत शत्रुता के अपीलार्थी के दावे के संबंध में, तो यह संभव था कि ऐसी परीक्षा जाँच अधिकारी के निष्कर्षों को प्रभावित कर सकती थी, जिससे संभावित रूप से एक भिन्न निष्कर्ष निकल सकता था; द्वितीय, जाँच अधिकारी ने अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों की सिद्धि के लिए अभियोजन साक्षी-1 की गवाही पर महत्वपूर्ण भरोसा जताया था, जिसे प्रति-परीक्षण का अवसर दिए जाने पर ध्वस्त किया जा सकता था; और तृतीय, अभियोजन साक्षी-2, जो कि एकमात्र अन्य साक्षी था, उसने प्रति-परीक्षण के दौरान अपीलार्थी को पहचानने से इनकार कर दिया – इसके अतिरिक्त, जाँच अधिकारी और उत्तरदाताओं संख्या 5, 4 और 2 ने साक्ष्य और मामले के गुणों से इतर तथ्यों पर विचार करके एक निष्पक्ष निष्कर्ष तक पहुँचने की अपनी क्षमता से समझौता किया है, अर्थात् यह तथ्य कि आरोप संख्या 2 को आरोप-पत्र का हिस्सा बनाया गया था, जबकि अपीलार्थी को इसके लिए पहले ही दंडित किया जा चुका

था - साथ ही, जाँच अधिकारी और उत्तरदाताओं संख्या 5, 4 और 2 ने इस तथ्य की अनदेखी की है कि सूचक, जिसकी शिकायत पर अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू हुई थी, उसे साक्षी नहीं बनाया गया - आरोप संख्या 3 के संबंध में, आरोप में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि अपीलार्थी को 08.08.1988 को गिरफ्तार किया गया था - परिणामस्वरूप, यह असंभव है कि अपीलार्थी उसी तिथि को अपने कर्तव्यों पर वापस आ सकता था - अंततः, जो शेष बचता है वह आरोप संख्या 4 है - गिरफ्तार होने के बाद, अपीलार्थी से यह उचित अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि वह जमानत मिलने तक अपनी गिरफ्तारी के तथ्य की सूचना दे - अपीलार्थी ने दावा किया कि उसने अभियोजन साक्षी-1 से अपनी गिरफ्तारी की सूचना अपराध अनुसंधान विभाग अधिकारियों को देने का अनुरोध किया था, लेकिन व्यक्तिगत शत्रुता के कारण अभियोजन साक्षी-1 ऐसा करने में विफल रहा - अभिलेख पर किसी विपरीत सामग्री के अभाव में यह संभावित प्रतीत होता है - अपीलार्थी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही निष्पक्षता के सिद्धांतों के साथ-साथ नैसर्गिक न्याय के अनुरूप संचालित नहीं की गई थी, जिससे उसके बचाव पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा - अतः, आक्षेपित आदेश असंधार्य है और इसे अपास्त किया जाता है। [कंडिका 53, 57, 58, 61, 62, 63]

दीवानी सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1930 - नियम 55 - बिहार और उड़ीसा अधीनस्थ सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1935 - नियम 2 से संलग्न टिप्पणी 1 - बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 2005 - क्या अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने में सम्यक प्रक्रिया का पालन किया गया था और क्या तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर उसकी सेवा से बर्खास्तगी न्यायोचित है:

अभिनिर्धारित: 1930 की नियमावली का नियम 55 यह निर्धारित करता है कि प्रस्तावित अनुशासनात्मक कार्यवाई के आधारों को विशिष्ट आरोपों के रूप में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए, जिसके साथ प्रत्येक आरोप का समर्थन करने वाले अभिकथनों का विस्तृत विवरण होना चाहिए - अपीलार्थी की ओर से एक विशिष्ट आपत्ति ली गई है कि आरोप

अस्पष्ट, अनिश्चित, गैर-विशिष्ट और भौतिक विवरणों से रहित थे – हालाँकि, विभागीय फ़ाइल को रोक कर रखने के दृष्टिगत, जो अनुमान वैध और उचित रूप से लगाया जा सकता है वह यह है कि उत्तरदाताओं ने जानबूझकर विभागीय फ़ाइल पेश नहीं की, ताकि शुरुआत से ही अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाही में मौजूद अवैधता उजागर न हो जाए – अपीलार्थी के इस पक्ष को स्वीकार किया जाना चाहिए कि उसके विरुद्ध तैयार किए गए आरोप अस्पष्ट, अनिश्चित, गैर-विशिष्ट थे और उनमें आवश्यक विवरणों का अभाव था – इसके अलावा, इस न्यायालय के समक्ष उपलब्ध सामग्रियों के अवलोकन पर, संभावनाओं की प्रबलता अपीलार्थी के पक्ष में है कि उसे अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण करने के उसके अधिकार से वंचित किया गया था – इसके बाद, जाँच अधिकारी ने प्रति-परीक्षण के दौरान अभियोजन साक्षी-2 के पक्ष पर अविश्वास व्यक्त किया, जब उसने कथित अपराधों में अपीलार्थी की संलिप्तता से स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया था – जाँच अधिकारी ने सुझाव दिया कि अभियोजन साक्षी-2 अपीलार्थी द्वारा अनुचित रूप से प्रभावित या प्रेरित हो सकता है, यह नोट करते हुए कि प्रति-परीक्षण, अभियोजन साक्षी-2 की मुख्य परीक्षा की तिथि से नौ (9) महीने के लंबे विलंब के बाद हुई थी – यहाँ एक बार फिर अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित विभागीय फ़ाइल को रोकने के तथ्य पर वापस जाना आवश्यक है, जिससे अपीलार्थी द्वारा प्रति-परीक्षण के लिए अभियोजन द्वारा अभियोजन साक्षी-2 को पेश करने में हुए विलंब के कारण का पता नहीं लगाया जा सका – किसी भी स्थिति में, इस तरह के लंबे अंतराल के लिए अपीलार्थी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता – जाँच अधिकारी ने जाँच के संचालन के दौरान जो दृष्टिकोण अपनाया वह न्यायोचित नहीं था – उसके द्वारा निष्कर्ष न तो *स्वयं की मर्जी* पर और न ही अनुमानों और अटकलों के आधार पर, बल्कि कानूनी साक्ष्य के आधार पर दिए जाने चाहिए थे – यह रेखांकित करना और भी अनिवार्य है कि अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप-पत्र सूचक की लिखित शिकायत के आधार पर जारी किया गया था – कानून इस संबंध में पुनः स्पष्ट है कि केवल दस्तावेज पेश करना ही प्रमाण नहीं है – यदि लिखित शिकायत के आधार पर आरोप-पत्र

जारी किया जाता है, तो लेखक/शिकायतकर्ता को (साक्षी के रूप में) पेश किया जाना चाहिए – विशेष रूप से, वर्तमान मामले में, सूचक/शिकायतकर्ता की परीक्षा नहीं की गई थी – यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक अन्य स्पष्ट त्रुटि है – सामग्रियों की समीक्षा करने और आरोप-पत्र जारी करने में उपर्युक्त विसंगतियों और प्रक्रियात्मक खामियों पर विचार करने के बाद, जिनमें से किसी को भी अपीलार्थी के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता, और अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित विभागीय फ़ाइल की अनुपस्थिति के आलोक में, यह बिना किसी संदेह के निष्कर्ष निकाला जाता है कि अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने में सम्यक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, जिससे बर्खास्तगी अन्यायपूर्ण हो गई है। [कंडिका 32, 33, 34, 38, 39, 40, 42, 43, 44]

दीवानी सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1930 – नियम 55 – बिहार और उड़ीसा अधीनस्थ सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1935 – नियम 2 से संलग्न टिप्पणी 1 – बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 2005 – अनुशासनात्मक कार्यवाही में, जाँच अधिकारी ने अपीलार्थी को सभी आरोपों का दोषी पाया – हालाँकि, उसे आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्त कर दिया गया – क्या मामले के तथ्यों, साक्ष्य, साक्षियों और परिस्थितियों के आलोक में, आपराधिक कार्यवाही के आरोप विभागीय कार्यवाही के आरोपों के सारतः समान हैं, जिससे कि आपराधिक मामले में दोषमुक्ति अनुशासनात्मक कार्यवाही के निष्कर्षों को कमजोर बना देगी:

अभिनिर्धारित: यद्यपि आपराधिक मामले में दोषमुक्ति स्वचालित रूप से अभियुक्त को अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद सार्वजनिक सेवा से उसकी बर्खास्तगी को अपास्त करने के आदेश का हकदार नहीं बनाती है, फिर भी यह सुस्थापित है कि जब विभागीय जाँच और आपराधिक कार्यवाही दोनों में आरोप, साक्ष्य, साक्षी और परिस्थितियाँ समान या सारतः समरूप हों, तो स्थिति एक भिन्न संदर्भ ग्रहण कर लेती है – ऐसे मामलों में, अनुशासनात्मक

कार्यवाही के निष्कर्षों को कायम रखना अन्यायपूर्ण, अनुचित और दमनकारी होगा – अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के साधारण पठन से ही पता चलता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोप संख्या 1, आपराधिक कार्यवाही के अभिकथनों से काफी मिलता-जुलता था – अपीलार्थी को दोषमुक्त करने वाले निर्णय से पता चलता है कि अभियोजन "उचित संदेह से परे अपना मामला साबित करने में बुरी तरह विफल रहा" क्योंकि सूचक और अभियोजन साक्षी-2 दोनों ने न्यायालय में अपीलार्थी को पहचानने से इनकार कर दिया था – इसके अलावा, प्रतिकूल अनुमान के सिद्धांत से अपीलार्थी का पक्ष और मजबूत होता है – यह उचित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तरदाताओं ने जानबूझकर विभागीय फाइल की स्कैन की गई प्रति को रोक कर रखा, जो यह आकलन करने के लिए आवश्यक थी कि क्या आपराधिक और विभागीय दोनों कार्यवाहियों में आरोप, साक्षी, साक्ष्य और परिस्थितियाँ सारतः समरूप या समान थीं; और ऐसा संभवतः संभावित प्रतिकूल परिणामों की चिंताओं के कारण किया गया – इसलिए, आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्त होने के बाद अपीलार्थी को आरोप संख्या 1 का दोषी पाए जाने का निष्कर्ष संधार्य नहीं रखा जा सकता, क्योंकि उक्त कार्यवाही में सारतः समान या समरूप आरोप, साक्ष्य, साक्षी और परिस्थितियाँ शामिल प्रतीत होती हैं। [कंडिका 47-50, 52, 53]

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 114(ग) – पक्षकार द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफलता – यह धारणा कि रोक कर रखा गया साक्ष्य प्रतिकूल होगा – चर्चा की गई। [कंडिका 27]

भारत का संविधान – अनुच्छेद 226, 227 – उच्च न्यायालय उन शक्तियों का प्रयोग नहीं करता है जो एक अपीलीय न्यायालय को उपलब्ध होती हैं – निर्णय लेने की प्रक्रिया संवीक्षा के अधीन आती है – चर्चा की गई। [कंडिका 55, 56]

न्याय दृष्टान्त

भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल [1964] एस.सी.आर. 718 : ए.आई.आर. 1964 एस.सी.

364 – अनुसरण किया गया।

सूरत चंद्र चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [1971] 3 एस.सी.आर. 1 : (1970) 3

एस.सी.सी. 548 – पर भरोसा किया गया।

सवाई सिंह बनाम राजस्थान राज्य [1986] 2 एस.सी.आर. 957 : ए.आई.आर. 1986

एस.सी. 995; जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य [2006] अनुपूरक 2 एस.सी.आर.

253 : ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2129; भारत संघ बनाम पी. गुणसेकरण [2014] 13

एस.सी.आर. 1312 : (2015) 2 एस.सी.सी. 610; टी.एन.सी.एस. कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम

के. मीराबाई [2006] 1 एस.सी.आर. 540 : (2006) 2 एस.सी.सी. 255; राज्य (पुलिस

निरीक्षक) बनाम सूर्य संकरम करी [2006] अनुपूरक 5 एस.सी.आर. 229 : (2006) 7

एस.सी.सी. 172; बरेली विद्युत आपूर्ति कंपनी लिमिटेड बनाम वर्कमैन एवं अन्य [1972] 1

एस.सी.आर. 241 : (1971) 2 एस.सी.सी. 617; राम लाल बनाम राजस्थान राज्य [2023]

15 एस.सी.आर. 808 : (2024) 1 एस.सी.सी. 175; मैसूर राज्य बनाम शिवबसप्पा शिवप्पा

मकरपुर [1963] एस.सी.आर. 943 : ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 375; एल.के. त्रिपाठी

बनाम भारतीय स्टेट बैंक [1984] 1 एस.सी.आर. 184 : ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 273;

मैसूर राज्य बनाम के. मंचे गौड़ा [1964] 4 एस.सी.आर. 540 : ए.आई.आर. 1964 एस.सी.

506; निकोलस पीरामल इंडिया लिमिटेड बनाम हरि सिंह (2015) 8 एस.सी.सी. 272 –

संदर्भित।

अधिनियमों की सूची

भारतीय दंड संहिता, 1860; साक्ष्य अधिनियम, 1872; दीवानी सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1930; बिहार और उड़ीसा अधीनस्थ सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1935; बिहार पुलिस नियमावली, 1978।

मुख्य शब्दों की सूची

विभागीय कार्यवाही; अनुशासनात्मक कार्यवाही; सेवा से बर्खास्तगी; आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्ति; विभागीय फ़ाइल प्रस्तुत नहीं की गई; प्रतिकूल अनुमान का सिद्धांत; सम्यक प्रक्रिया; प्रति-परीक्षण का अधिकार; स्वयं की मर्जी; प्रक्रियात्मक खामियाँ; सारतः समान या समरूप आरोप; नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत; निष्पक्षता का सिद्धांत।

प्रकरण से उत्पन्न

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील संख्या 5497/2025

पटना स्थित उच्च न्यायालय के एल.पी.ए. संख्या 516/2014 में पारित दिनांक 16.11.2016 के निर्णय एवं आदेश से उद्भूत।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

अपीलार्थी के अधिवक्ता:

सुनील कुमार, वरिष्ठ अधिवक्ता; राजीव जैन; सुश्री रोहिणी प्रसाद।

उत्तरदाताओं के अधिवक्ता:

समीर अली खान; प्रांजल शर्मा; काशिफ इर्शाद खान; अभिमन्यु झांबा।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

दीपांकर दत्ता, न्यायमूर्ति।

1. अनुमति प्रदान की गई।

अपील

2. यह दीवानी अपील पटना¹ स्थित उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 16 नवंबर 2016² के निर्णय और आदेश के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा उत्तरदाताओं की अंतः-न्यायालय अपील³ को स्वीकार कर लिया गया था। यह अपील महाराणा प्रताप सिंह⁴ द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत एक रिट याचिका⁵ से उत्पन्न हुई थी। एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश दिनांक 16 जुलाई, 2013 को अपास्त कर दिया गया था और परिणामस्वरूप, अपीलार्थी की रिट याचिका खारिज कर दी गई थी। एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने के आदेश को अभिखंडित कर दिया था और निर्देश दिया था कि उसे बर्खास्तगी की तिथि से सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल किया जाए।

तथ्य

3. अपीलार्थी को वर्ष 1973 में अपराध अनुसंधान विभाग⁶ के श्वान दस्ता में सिपाही के रूप में नियुक्त किया गया था। वह दो दिनों के अर्जित अवकाश पर गया था, और उसकी मंशा 8 अगस्त, 1988 को अपने कर्तव्यों पर वापस आने की थी। संयोगवश, 7 अगस्त 1988 को, एक प्रेम कुमार सिंह⁷ की शिकायत पर अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध

1 उच्च न्यायालय

2 आक्षेपित आदेश

3 2015 की एल.पी.ए. सं. 516

4 अपीलकर्ता

5 2004 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद सं 471

6 अपराध अनुसंधान विभाग

7 सूचक

एक प्रथम सूचना प्रतिवेदन⁸ दर्ज की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय दंड संहिता, 1860⁹ की धारा 392, 387, 420, 342, 419 के साथ पठित धारा 34 के तहत अपराधों के लिए कोतवाली थाना कांड संख्या 882/1988 दर्ज किया गया। प्राथमिकी में उन व्यक्तियों को पकड़ने के लिए एक छापेमारी दल के गठन का अनुरोध किया गया था जिन्होंने सूचक को डरा-धमकाकर उगाही करके उससे पैसे वसूले थे। एक छापेमारी दल का गठन किया गया, जिसने 8 अगस्त, 1988 को पटना के राजस्थान होटल में छापेमारी की। आरोपी के वहां सूचक से ₹40,000/- (चालीस हजार रुपये) लेने के लिए पहुंचने की उम्मीद थी। इसी बीच, अपीलार्थी अपना अर्जित अवकाश पूरा करने के बाद कार्यभार संभालने के लिए कार्यालय जा रहा था, तभी सूचक ने अपीलार्थी को ब्रीफकेस थमा दिया। इसके बाद, अपीलार्थी को गिरफ्तार कर लिया गया और कोतवाली थाने लाया गया। उसी तिथि, यानी 08 अगस्त, 1988 को, अपीलार्थी को उसके उच्च अधिकारी द्वारा निलंबित कर दिया गया।

4. 14 जून, 1989 को, आरोपों का एक ज्ञापन तैयार करके अपीलार्थी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही¹⁰ शुरू की गई। अपीलार्थी पर विधिवत तामील किए गए इस ज्ञापन में 4 (चार) आरोप लगाए गए थे, जिनका विवरण नीचे दिया गया है:

- i. सूचक की लिखित शिकायत के आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 392, 387, 420, 342, 419 और 34 के तहत एक मामला दर्ज किया गया था। इस मामले के संबंध में, अपीलार्थी को सूचक से ₹40,000/- (चालीस हजार रुपये) प्राप्त करते समय गिरफ्तार किया गया था, जो कथित तौर पर

8 प्राथमिकी

9 भारतीय दंड संहिता

10 1989 की कार्यवाही संख्या 9

बंदूक की नोक पर प्रतिरूपण द्वारा धोखाधड़ी और जबरन वसूली के कार्य को अंजाम देने के क्रम में किया गया था।

- ii 30 जून 1976 को, अपीलार्थी के विरुद्ध खुद को अपराध अनुसंधान विभाग के उप-निरीक्षक के रूप में गलत तरीके से प्रस्तुत करके एल्फिंस्टन सिनेमा हॉल के प्रबंधक के साथ धोखाधड़ी करने का एक मामला दर्ज किया गया था। अपीलार्थी को उस अपराध का दोषी पाया गया और तदनुसार दंडित किया गया था।
 - iii अर्जित अवकाश का लाभ उठाने के बाद, अपीलार्थी बिना किसी सूचना के 08 अगस्त, 1988 को अपने कर्तव्य पर उपस्थित होने में विफल रहा, हालांकि बाद में उसी दिन कोतवाली पुलिस स्टेशन के कर्मियों द्वारा उसे गिरफ्तार कर लिया गया था।
 - iv अपीलार्थी 8 अगस्त, 1988 को अपनी गिरफ्तारी के बारे में अपराध अनुसंधान विभाग मुख्यालय को सूचित करने में विफल रहा।
5. जापन के उत्तर में, अपीलार्थी ने दिनांक 15 मार्च, 1990 को एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें अनुरोध किया गया कि विभागीय कार्यवाही केवल आपराधिक कार्यवाही के समापन के पश्चात ही संचालित की जाए। अपीलार्थी ने यह चिंता व्यक्त की कि यदि विभागीय कार्यवाही पहले आयोजित की गई और यदि अपीलार्थी ने विभागीय जाँच के दौरान साक्षियों से प्रति-परीक्षण की, तो उसका बचाव उजागर होना निश्चित है; और इससे आपराधिक कार्यवाही में उसे गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पहुँचेगा। अपीलार्थी की प्रार्थना के बावजूद, एक जाँच शुरू हुई जिसका समापन जाँच अधिकारी द्वारा 3

मई, 1995¹¹ को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के साथ हुआ, जिसमें अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों का दोषी पाया गया।

6. तत्पश्चात, पुलिस अधीक्षक, अपराध अनुसंधान विभाग¹² द्वारा 23 जून, 1995 को अपीलार्थी को एक द्वितीय कारण बताओ नोटिस तामील किया गया, जिसमें उनसे यह कारण बताने की अपेक्षा की गई कि उन्हें सेवा से बर्खास्त क्यों न कर दिया जाए। जाँच अधिकारी की प्रतिवेदन की प्रति भी उपलब्ध कराई गई। अपीलार्थी ने 11 मार्च, 1996 को द्वितीय कारण बताओ नोटिस का उत्तर दिया, जिसमें उन्होंने जाँच के दौरान जाँच अधिकारी द्वारा की गई उन अवैधताओं की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया जिनसे जाँच दूषित हो गई थी। इसके बावजूद, उत्तरदाता संख्या 5 ने जाँच प्रतिवेदन को स्वीकार कर लिया और दिनांक 21 जून, 1996 के ज्ञापन संख्या 1833 में समाहित दिनांक 14 जून, 1996 के आदेश द्वारा अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त कर दिया, साथ ही यह अतिरिक्त निर्देश भी दिया कि अपीलार्थी निलंबन की अवधि के लिए पहले से वितरित राशि के अतिरिक्त किसी भी भुगतान का हकदार नहीं होगा।
7. इसी बीच, अपीलार्थी और सह-अभियुक्तों के विरुद्ध विचारण चलाया गया और विचारण न्यायालय द्वारा 26 अप्रैल, 1994 को उन्हें दोषी सिद्ध किया गया। अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 384 और 411 के तहत अपराधों का दोषी पाया गया और उसे एक वर्ष की अवधि के लिए साधारण कारावास की सजा सुनाई गई। हालाँकि, उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 392 और 419 के आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया।

11 जाँच प्रतिवेदन

12 उत्तरदाता सं. 5

8. अपीलार्थी द्वारा दोषसिद्धि के निर्णय और सजा के आदेश के विरुद्ध अपील¹³ दायर किए जाने पर, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-XI, पटना¹⁴ ने 16 फरवरी, 1996 को चुनौती के अधीन निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया। अपीलार्थी को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया और अपीलीय न्यायालय ने यह धारित किया कि अभियोजन अपना मामला साबित करने में विफल रहा है।
9. उत्तरदाता संख्या 5 द्वारा पारित दिनांक 21 जून, 1996 के बर्खास्तगी आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने पुलिस उप-महानिरीक्षक¹⁵ के समक्ष एक अपील दायर की। हालाँकि, दिनांक 14 जुलाई, 1997 के आदेश द्वारा, उत्तरदाता संख्या 4 ने अपील को खारिज कर दिया और जाँच अधिकारी की प्रतिवेदन एवं निष्कर्षों के आधार पर उत्तरदाताओं संख्या 5 द्वारा दिनांक 21 जून, 1996 को पारित बर्खास्तगी आदेश को बरकरार रखा।
10. इसके पश्चात, अपीलार्थी ने अपीलीय आदेश को चुनौती देते हुए 24 सितंबर, 1997 को पुलिस महानिदेशक-सह-महानिरीक्षक, अपराध अनुसंधान विभाग¹⁶ के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की। हालाँकि, पुनरीक्षण पर निर्णय न होने के कारण, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका¹⁷ दायर की। उक्त रिट याचिका को 13 मई, 2002 को इस निर्देश के साथ निस्तारित किया गया कि उत्तरदाताओं संख्या 2 आदेश की तारीख से दो महीने के भीतर अपीलार्थी के पुनरीक्षण पर निर्णय लें। उक्त निर्देश के अनुपालन में, उत्तरदाताओं संख्या 5 ने 06 अगस्त, 2003 को पुनरीक्षण को खारिज कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप बर्खास्तगी का आदेश पुनः पुष्ट हो गया।

13 1994 की आपराधिक अपील संख्या 108

14 सत्र न्यायाधीश

15 उत्तरदाता संख्या 4

16 उत्तरदाता संख्या 2

17 2002 की सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 5946

एकल न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही

11. पुनरीक्षण के परिणाम से पूरी तरह असंतुष्ट होकर, अपीलार्थी ने पुनरीक्षण आदेश (जिसमें अपीलीय आदेश और बर्खास्तगी का मूल आदेश विलीन हो गया था) को उस रिट याचिका में चुनौती दी, जिससे यह दीवानी अपील उत्पन्न हुई है। अपीलार्थी ने अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाई: (i) थाना प्रभारी¹⁸ की न तो अपीलार्थी की उपस्थिति में परीक्षा की गई और न ही उससे प्रति-परीक्षण करने की अनुमति दी गई, जिससे अनुशासनात्मक कार्यवाही दूषित हो गई; (ii) विभागीय और आपराधिक दोनों कार्यवाहियाँ सूचक की लिखित शिकायत पर आधारित समान तथ्यों से उत्पन्न होने और उनमें समरूप आरोप शामिल होने के कारण, आपराधिक कार्यवाही में अपीलार्थी के दोषमुक्त होने के पश्चात अनुशासनात्मक कार्यवाही विचारणीय नहीं रही और उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए था; (iii) बर्खास्तगी के आदेश ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया; (iv) उत्तरदाता संख्या 4 ने अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर दिए बिना बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखा; और (v) उत्तरदाता संख्या 2 का कर्तव्य गलत को ठीक करना था, जिसे निभाने में वे विफल रहे। अपीलार्थी द्वारा आक्षेपित आदेशों को अभिखंडित करने के लिए 'उत्प्रेषण लेख' जारी करने की मांग की गई थी। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी ने 'परमादेश लेख' जारी करने की भी मांग की, जिसमें उत्तरदाताओं को उसे सभी परिणामी लाभ प्रदान करने का निर्देश दिया जाए, मानो वह कभी सेवा से बर्खास्त ही नहीं किया गया था।
12. एकल न्यायाधीश ने सूचक — जिसने विभाग में अपीलार्थी के विरुद्ध एक लिखित कथन भी प्रस्तुत किया था — द्वारा लगाए गए अभिकथनों के परीक्षण पर यह पाया कि सूचक द्वारा प्रस्तुत वृत्तान्त स्पष्ट विसंगतियों के कारण विश्वसनीयता से रहित था। विशेष रूप से, जिस प्रश्न ने एकल न्यायाधीश को दुविधा में डाला वह यह था कि कोई

व्यक्ति केवल चाय पीने के उद्देश्य से होटल के कमरे में क्यों जाएगा, और क्यों कोई परिचित व्यक्ति सूचक और देवनाथ पाठक¹⁹ दोनों को होटल के कमरे तक ले जाएगा जबकि एक युवती को साथ वाले शौचालय में छोड़ दिया गया था। एकल न्यायाधीश की यह राय थी कि जाँच अधिकारी द्वारा अभियोजन साक्षी-1 की गवाही पर भरोसा करना, जिससे प्रति-परीक्षण करने की अनुमति नहीं दी गई थी, अनुचित प्रभाव की चिंताओं को जन्म देता है। अभियोजन साक्षी-1 का वीरेंद्र सिंह के परिवार के साथ वैवाहिक संबंध था, जिसके कथित तौर पर अपीलार्थी के परिवार के साथ तनावपूर्ण संबंध थे, जो अपीलार्थी के विरुद्ध कार्य करने के व्यक्तिगत उद्देश्य का संकेत देता है। हालाँकि, जाँच अधिकारी इस संभावित हितों के टकराव के संबंध में अपीलार्थी के तर्क का परीक्षण करने या उसे संबोधित करने में विफल रहे। एकल न्यायाधीश ने आगे यह भी देखा कि उत्तरदाताओं का यह दावा, जिसमें अपीलार्थी द्वारा अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण करने की अनुमति के लिए जाँच अधिकारी को लिखित अनुरोध न देने की बात कही गई थी, न तो कानूनी रूप से मान्य थी और न ही उचित थी। अपीलार्थी के लिए ऐसा अनुरोध प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं था; बल्कि, यह जाँच अधिकारी का कर्तव्य था कि वह यह सुनिश्चित करे कि अपीलार्थी को साक्षी से प्रति-परीक्षण करने का अवसर दिया जाए। परिणामस्वरूप, अपीलार्थी को ऐसा अवसर प्रदान किए जाने की अनुपस्थिति में अभियोजन साक्षी-1 की गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता था।

13. एकल न्यायाधीश ने *सवाई सिंह बनाम राजस्थान राज्य*²⁰ के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए यह धारित किया कि आरोप अस्पष्ट, अनिश्चित और भौतिक विवरणों से रहित थे।

19 अभियोजन साक्षी-2

20 ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 995

14. एकल न्यायाधीश ने आगे यह उल्लेख किया कि अपीलार्थी के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही के आरोप और उन्हें सिद्ध करने के लिए अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य काफी हद तक अनुशासनात्मक कार्यवाही के समान ही थे। *जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य²¹* के निर्णय पर भरोसा करते हुए, एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोप संख्या 1 को सिद्ध नहीं माना जा सकता था, क्योंकि उत्तरदाता संख्या 5, 4 और 2 संबंधित सत्र न्यायाधीश के तर्क से भिन्न कोई तर्क देने में विफल रहे, जिन्होंने अपीलार्थी को आरोपों से दोषमुक्त किया था। एकल न्यायाधीश ने आगे यह भी देखा कि उत्तरदाताओं के लिए बाद की विभागीय कार्यवाही में आरोप संख्या 2 को फिर से खोलना उचित नहीं था, क्योंकि मामला 1976 में ही समाप्त हो गया था और अपीलार्थी को दंड दिया जा चुका था। आरोप संख्या 3 और 4 के संबंध में, एकल न्यायाधीश ने उन्हें स्वतः स्पष्ट पाया और यह नोट किया कि 8 अगस्त, 1988 को अपीलार्थी की गिरफ्तारी और उसके बाद पुलिस हवालात में निरुद्ध किए जाने के कारण वह अपने कर्तव्यों पर वापस आने और अपराध अनुसंधान विभाग मुख्यालय को अपनी गिरफ्तारी के बारे में सूचित करने में असमर्थ रहा था।
15. उपर्युक्त निष्कर्षों और परिणामों के आलोक में, एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों को तुच्छ और निराधार पाया, तथा यह भी पाया कि जाँच अधिकारी सम्यक प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहे। परिणामस्वरूप, 16 जुलाई 2013 के निर्णय और आदेश द्वारा, एकल न्यायाधीश ने 21 जून 1996 के बर्खास्तगी आदेश (जिसे उत्तरदाताओं संख्या 4 और 2 द्वारा क्रमशः 14 जुलाई 1997 और 6 अगस्त 2003 को बरकरार रखा गया था) को अभिखंडित कर दिया, और उत्तरदाताओं को निर्देश दिया कि वे अपीलार्थी को बर्खास्तगी की तिथि से सभी परिणामी लाभ प्रदान करें।

खंडपीठ के समक्ष कार्यवाही

16. एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, उत्तरदाताओं ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष अपील दायर की।
17. खंडपीठ ने, मिसालों की एक श्रृंखला पर भरोसा करते हुए और उनसे विस्तृत उद्धरण देते हुए यह टिप्पणी की कि एकल न्यायाधीश द्वारा क्षेत्राधिकार का प्रयोग, विभागीय अधिकारियों के निर्णय पर अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग को दर्शाता है, जबकि विभागीय आदेशों की न्यायिक पुनरावलोकन का ध्यान पूरी तरह से निर्णय लेने की प्रक्रिया पर होना चाहिए न कि निष्कर्षों के गुण-दोष पर। खंडपीठ ने **भारत संघ बनाम पी. गुणसेकरण**²² पर भरोसा करते हुए यह धारित किया कि एकल न्यायाधीश द्वारा साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन, जिसके कारण अपीलार्थी की बेगुनाही का निष्कर्ष निकला, ऐसा दृष्टिकोण अपनाने के लिए न्यायसंगत आधार की कमी के कारण असंभार्य था। इसने इस बात पर भी जोर दिया कि **टी.एन.सी.एस. कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम के. मीराबाई**²³ में घोषित किए गए सिद्धांतों के अनुसार, साक्ष्य के सख्त नियम विभागीय कार्यवाही पर लागू नहीं होते हैं। खंडपीठ ने आगे तथ्यों की भिन्न परिस्थितियों के आधार पर एकल न्यायाधीश द्वारा भरोसा किए गए **सवाई सिंह** (उपरोक्त) के निर्णय में अंतर स्पष्ट किया। इसने निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप विशिष्ट थे, और जाँच के दौरान प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का उचित पालन किया गया था, साथ ही अपीलार्थी को पर्याप्त अवसर प्रदान किए गए थे।
18. खंडपीठ ने कानूनी सिद्धांतों के संबंध में इस न्यायालय के कई निर्णयों का भी उल्लेख किया, जिनमें विभागीय कार्यवाही में अनुश्रुत साक्ष्य की स्वीकार्यता, नैसर्गिक न्याय के नियम, प्रति-परीक्षण करने का अधिकार, साक्ष्य प्रस्तुत करने के अवसर और अनुशासनात्मक कार्यवाही में नैसर्गिक न्याय के दायरे शामिल थे। इसके अतिरिक्त,

22 (2015) 2 एस.सी. सी. 610

23 (2006) 2 एस.सी. सी. 255

विभाग²⁴ द्वारा संधारित कार्यवाही फाइल की समीक्षा करने पर, खंडपीठ ने उत्तरदाताओं के दावों को पुष्ट पाया। यह निष्कर्ष निकाला गया कि जाँच के दौरान कोई प्रक्रियात्मक त्रुटि या नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन नहीं हुआ था। फलस्वरूप, एकल न्यायाधीश द्वारा बर्खास्तगी के आदेश में हस्तक्षेप किया जाना न्यायोचित नहीं था।

19. ऐसे निष्कर्षों के आधार पर, खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश को अपास्त कर दिया और रिट याचिका को खारिज कर दिया।

तर्क

20. अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने, आक्षेपित निर्णय पर प्रहार करते हुए निवेदन किया कि निम्नलिखित बिंदु इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने योग्य हैं:

क. *प्रथम, जी. एम. टैंक* (उपरोक्त) के निर्णय के आलोक में, खंडपीठ यह पहचानने में विफल रही कि आपराधिक और अनुशासनात्मक दोनों कार्यवाहियाँ समान अभिकथनों, समान तथ्यों, समान साक्ष्यों और समान साक्ष्यों पर आधारित थीं। सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी को गुण-दोष के आधार पर दोषमुक्त किया गया था, और इस कारण उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही में दोषी नहीं ठहराया जा सकता था।

ख. *द्वितीय*, सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी को गुण-दोष के मूल्यांकन के आधार पर दोषमुक्त किया गया था, न कि तकनीकी आधारों पर। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि आपराधिक कार्यवाही के दौरान सूचक अपीलार्थी को पहचानने में विफल रहा था, जिसे जाँच में साक्षी भी नहीं बनाया गया था। इसके अतिरिक्त, अभियोजन साक्षी-2 ने जाँच और आपराधिक मामले, दोनों

में अपीलार्थी की संलिप्तता से इनकार किया और उसे पहचानने से मना कर दिया।

- ग. तृतीय, जाँच प्रतिवेदन के वे निष्कर्ष जिनमें अपीलार्थी को दोषी ठहराया गया था और जिन्हें उत्तरदाताओं संख्या 5, 4 और 2 द्वारा बरकरार रखा गया था, विश्वसनीयता से रहित हैं। परिणामस्वरूप, ये निष्कर्ष न केवल विपरीत हैं, बल्कि बाहरी कारकों और दुर्भावनापूर्ण इरादों से भी प्रभावित हैं।
- घ. चतुर्थ, अभियोजन साक्षी-1 अपीलार्थी के प्रति व्यक्तिगत रंजिश रखता था, और इस तथ्य को उत्तरदाताओं के संज्ञान में लाया गया था। हालाँकि, उनके द्वारा इस मुद्दे का न तो परीक्षण किया गया और न ही इस पर विचार किया गया, जबकि तथ्य-खोजने वाले प्राधिकारी होने के नाते यह विषय गहन परीक्षण और उचित विचार का हकदार था।
- ङ. पाँचवां, आरोप संख्या 2 के संबंध में, अपीलार्थी पहले ही अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना कर चुका था और उसे दंडित भी किया जा चुका था; अतः, उसी कदाचार के लिए उसके विरुद्ध पुनः कार्यवाही करना 'दोहरे दंड' के आधार पर वर्जित था। इसके अतिरिक्त, जाँच प्रतिवेदन की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि उक्त आरोप की पुष्टि करने वाले साक्ष्यों का पूर्ण अभाव है।
- च. छठा, आरोप संख्या 3 और 4, आरोप संख्या 1 से ही व्युत्पन्न हैं और बाहरी उद्देश्यों से प्रेरित हैं। 8 अगस्त 1988 को अपनी गिरफ्तारी के बाद, अपीलार्थी द्वारा थाना प्रभारी से अपराध अनुसंधान विभाग अधिकारियों को सूचित करने के बार-बार किए गए अनुरोधों को जानबूझकर नजरअंदाज कर दिया गया। स्वयं जाँच प्रतिवेदन में आरोप संख्या 4 के लिए साक्ष्य की कमी को स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी को 8 अगस्त

1988 को केवल तभी निलंबित किया जा सकता था, यदि अधिकारियों को उसकी गिरफ्तारी की सूचना न दी गई होती।

छ. सातवां, जाँच में अपनाई गई प्रक्रिया न तो निष्पक्ष थी और न ही उचित, क्योंकि एक पक्षपाती साक्षी (अभियोजन साक्षी-1) का परीक्षण अपीलार्थी की अनुपस्थिति में किया गया, जबकि इस बात को जाँच अधिकारी और उत्तरदाताओं के संज्ञान में लाया गया था। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी को उक्त साक्षी से प्रति-परीक्षण करने के अवसर से वंचित कर दिया गया था।

ज. आठवां, अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोप पूरी तरह से अस्पष्ट थे और उनमें भौतिक विशिष्टताओं का अभाव था; इसलिए, एकल न्यायाधीश द्वारा **सवाई सिंह** (उपरोक्त) के निर्णय पर सही भरोसा किया गया था।

झ. अंततः, जाँच अधिकारी और उत्तरदाताओं ने किसी भी स्वीकार्य साक्ष्य के बिना अपीलार्थी के विरुद्ध निष्कर्ष दर्ज करके कानूनी त्रुटि की है, जिसके परिणामस्वरूप न्याय का स्पष्ट हनन हुआ है। इसलिए, सेवा से बर्खास्तगी और परिणामी लाभों से इनकार करना स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण और दोषपूर्ण है।

21. इसके विपरीत, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान ने तर्क दिया कि खंडपीठ के आक्षेपित निर्णय में कानून या तथ्यों की कोई त्रुटि या दुर्बलता नहीं है, और स्पष्ट त्रुटि या अक्षमता का तो प्रश्न ही नहीं उठता, इसलिए इसमें किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आक्षेपित निर्णय को बरकरार रखने की मांग करते हुए यह दावा किया कि जाँच की प्रक्रिया में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता या नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन नहीं हुआ था।

22. अपीलार्थी के तर्कों का निम्नलिखित बिंदुओं को आगे बढ़ाते हुए पुरजोर खंडन करने का प्रयास किया गया:

- क. *प्रथम*, अभियोजन साक्षी-1 का परीक्षण अपीलार्थी की उपस्थिति में किया गया था, और साक्षी से प्रति-परीक्षण करने का अवसर दिए जाने के बावजूद, अपीलार्थी ने जानबूझकर ऐसा न करने का विकल्प चुना। जाँच अधिकारी का यह निष्कर्ष कि अभियोजन साक्षी-2, जिसने प्रति-परीक्षण के दौरान अपीलार्थी को पहचानने से इनकार कर दिया था, संभवतः मुख्य परीक्षण और प्रति-परीक्षण के बीच बीते समय के कारण अपीलार्थी के प्रभाव में आ गया था; और चूंकि यह निष्कर्ष सटीक था, इसलिए इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी।
- ख. *द्वितीय*, अनुशासनात्मक कार्यवाही के आरोप आपराधिक मामले के आरोपों से भिन्न हैं। आरोप संख्या 1 और 2 पर्याप्त रूप से सिद्ध किए गए थे, जबकि आरोप संख्या 3 और 4 को अपीलार्थी द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी। इसके अतिरिक्त, आरोप संख्या 2 'दोहरा दंड' नहीं है, क्योंकि यह किसी अलग अपराध के बजाय अपीलार्थी के पूर्व आचरण से संबंधित है।
- ग. *तृतीय*, अनुशासनात्मक कार्यवाही में दोष के साक्ष्य स्थापित करने के मानक आपराधिक कार्यवाही में लागू होने वाले मानकों से भिन्न होते हैं और ऐसे निर्णयों की भरमार है जो यह कानून घोषित करते हैं कि आपराधिक कार्यवाही में केवल दोषमुक्ति होने से, सिद्ध कदाचार के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के विभागीय निर्णय का स्वतः उलट जाना परिणाम नहीं होता है।

घ. चतुर्थ, खंडपीठ का यह अवलोकन बिल्कुल सही था कि एकल न्यायाधीश ने अपने रिट क्षेत्राधिकार की सीमाओं का उल्लंघन इस प्रकार किया था जैसे कि वे उत्तरदाताओं के प्रशासनिक निर्णयों पर अपील सुन रहे हों।

ड. पांचवां, अपीलार्थी एक अनुशासित बल का सदस्य होने के नाते एक पुलिस अधिकारी के लिए अशोभनीय आचरण करने का दोषी पाया गया था, और इसलिए, एकल न्यायाधीश द्वारा विवेक के अविवेकपूर्ण प्रयोग में हस्तक्षेप करने में खंडपीठ सही थी।

23. श्री खान ने, अतः, यह आग्रह किया कि खंडपीठ का आक्षेपित आदेश पुष्टि किए जाने योग्य है और अपील को खारिज किए जाने का आदेश दिया जाना चाहिए।

विक्षेपण और कारण

24. हमने पक्षों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/अधिवक्ता को विस्तार से सुना है और अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों का परीक्षण किया है।

25. निर्णय के लिए उभरने वाले निर्धारण के मुद्दे निम्नलिखित हैं:

(i) क्या अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने में सम्यक प्रक्रिया का पालन किया गया था और क्या हमारे समक्ष प्रस्तुत तथ्यों और परिस्थितियों में उसकी सेवा से बर्खास्तगी न्यायोचित है?

(ii) क्या मामले के तथ्यों, साक्ष्यों, गवाहों और परिस्थितियों के आलोक में, आपराधिक कार्यवाही के आरोप पर्याप्त रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही के समान हैं, जिससे कि आपराधिक मामले में दोषमुक्ति, अनुशासनात्मक कार्यवाही के निष्कर्षों को कमजोर बना देगी?

- (iii) क्या आक्षेपित निर्णय, जिसने उत्तरदाताओं की अपील को स्वीकार किया और अपीलार्थी की रिट याचिका को खारिज कर दिया, बरकरार रखे जाने योग्य है
- (iv) क्या अपीलार्थी किसी राहत का हकदार है, यदि उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर उसके पक्ष में दिया जाता है?
26. प्रारंभ में, यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि दिए गए तर्कों की प्रकृति को देखते हुए, जिनमें जाँच के अभिलेख को देखकर तथ्यों का पता लगाना आवश्यक था (जो अभिलेख पर उपलब्ध नहीं हैं), हमने दिनांक 17 दिसंबर, 2024 के आदेश के माध्यम से उत्तरदाताओं-बिहार राज्य को 10 जनवरी, 2025 तक संपूर्ण विभागीय फाइल की स्कैन की हुई प्रति प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था।
27. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114(जी) के तहत, यदि कोई पक्ष ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहता है जो उसके नियंत्रण में है, तो यह उपधारणा की जाती है कि दबाया गया साक्ष्य उसके लिए प्रतिकूल होता। यद्यपि इसके लिए किसी प्राधिकारी के संदर्भ की आवश्यकता नहीं है, फिर भी हम इस संबंध में **राज्य (पुलिस निरीक्षक) बनाम सूर्या शंकरम करी²⁵** के निर्णय का लाभप्रद रूप से उल्लेख कर सकते हैं।
28. हम खेदपूर्वक यह दर्ज करते हैं कि न तो हमारे अवलोकन के लिए विभागीय फाइल प्रस्तुत की गई है और न ही उत्तरदाताओं-बिहार राज्य द्वारा समय विस्तार के लिए कोई प्रार्थना की गई है। ऐसे आदेश के अनुपालन न करने का परिणाम घातक है, जैसा कि इसके बाद हमारी चर्चा से स्पष्ट होगा।
29. अब निर्णय के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दों पर विचार किया जा रहा है।

मुद्दा संख्या 1

30. वह विशिष्ट वैधानिक नियम जिसके तहत अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप-पत्र तैयार किया गया था या जाँच संचालित की गई थी, उसका पता नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि संपूर्ण आरोप-पत्र की प्रति 'पेपर बुक' (मुकदमे के कागजात) का हिस्सा नहीं है। यही मुख्य कारण है कि हमने अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित विभागीय फाइल मँगाई थी, जो दुर्भाग्यवश हमें उपलब्ध नहीं कराई गई है। बहरहाल, इस परिस्थिति को देखते हुए कि अपीलार्थी को 21 जून, 1996 को सेवा से बर्खास्त किया गया था, यह अनुमान लगाना तर्कसंगत है कि इस मामले में प्रासंगिक नियम संभवतः बिहार और उड़ीसा अधीनस्थ सेवा (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1935²⁶ और/या दीवानी सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 1930²⁷ होंगे। इन्हें दिनांक 3 जुलाई, 1963 की अधिसूचना संख्या III/63-8051-ऐ के माध्यम से अपनाया गया था, और बाद में इन्हें बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 2005 द्वारा निरसित कर दिया गया था।
31. हमारा उपरोक्त अनुमान बिहार पुलिस नियमावली, 1978 के नियम 824A (ई) से पुष्ट होता है, जो यह निर्धारित करता है कि विशेषज्ञों और अन्य रैंकों के अधिकारियों के लिए — अर्थात्, भारतीय पुलिस सेवा के सदस्यों, पुलिस उपाधीक्षकों और उनके समकक्ष रैंकों, लिपिकीय अधिकारियों और बिहार सशस्त्र पुलिस के सदस्यों को छोड़कर — यदि अधिकारी अराजपत्रित है तो 1935 के नियम लागू होंगे और यदि राजपत्रित है तो 1930 के नियम लागू होंगे। यह उल्लेखनीय है कि अपराध अनुसंधान विभाग में सिपाही का पद एक अराजपत्रित पद है और इसलिए, 1935 के नियमों ने ही आरोप-पत्र तैयार करके अपीलार्थी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की शक्ति का स्रोत प्रदान किया था।

26 1935 के नियम

27 1930 के नियम

32. 1935 के नियमों के नियम 2 के साथ संलग्न नोट 1 इस बात को रेखांकित करता है कि आरोपित अधिकारी के विरुद्ध बर्खास्तगी का आदेश जारी करने से पूर्व 1930 के नियमों के नियम 55 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाना अनिवार्य है। 1930 के नियमों का नियम 55 यह निर्धारित करता है कि प्रस्तावित अनुशासनात्मक कार्रवाई के आधारों को विशिष्ट आरोपों के रूप में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए, जिसके साथ प्रत्येक आरोप का समर्थन करने वाले अभिकथनों का विस्तृत विवरण भी होना चाहिए।
33. अभिलेख पर जो कुछ भी उपलब्ध है उसके अवलोकन से यह पाया गया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध 4 (चार) अलग-अलग आरोपों के तहत अभिकथन लगाए गए थे। चूंकि अपीलार्थी की ओर से यह विशिष्ट आपत्ति ली गई थी कि आरोप अस्पष्ट, अनिश्चित, गैर-विशिष्ट और भौतिक विशिष्टताओं से रहित थे, इसलिए हमने विभागीय फाइल से आरोप-पत्र की प्रकृति और शब्दावली को देखना और भी आवश्यक समझा। हालाँकि, विभागीय फाइल को रोके रखने के दृष्टिगत, जो उपधारणा वैध और विधिक रूप से की जा सकती है और जिसे हम इसके द्वारा करते हैं, वह यह है कि उत्तरदाताओं ने जानबूझकर विभागीय फाइल प्रस्तुत नहीं की ताकि प्रारंभ से ही अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाही में रही अवैधता उजागर न हो जाए।
34. पूर्वगामी चर्चा के आधार पर, अपीलार्थी के इस पक्ष को स्वीकार करना होगा कि उसके विरुद्ध तैयार किए गए आरोप अस्पष्ट, अनिश्चित, गैर-विशिष्ट और आवश्यक विशिष्टताओं से रहित थे। इस प्रकार, इस न्यायालय का **सवाई सिंह** (उपरोक्त) का निर्णय इस मामले में पूरी तरह से लागू होता है। यह, बदले में, इस निष्कर्ष को पुष्ट करता है कि आरोप-पत्र ने 1930 के नियमों के नियम 55 का उल्लंघन किया है, जिसे 1935 के नियमों के नियम 2 के नोट 1 द्वारा लागू किया गया था।

35. यदि अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत में ही कोई त्रुटि हो, अर्थात् आरोप-पत्र प्रासंगिक नियमों के अनुरूप जारी नहीं किया गया हो और आरोपित अधिकारी को आरोपों का जवाब देना कठिन लगता हो क्योंकि वे अस्पष्ट, अनिश्चित, गैर-विशिष्ट और भौतिक विवरणों से रहित हैं, तो आरोप-पत्र स्वयं ही सुभेद्यता के प्रति संवेदनशील हो जाता है। हमें इस न्यायालय के *सूरत चंद्र चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य*²⁸ के निर्णय की याद आती है, जहाँ इस न्यायालय ने यह व्यवस्था दी थी कि:

6. अब वर्तमान मामले में प्रत्येक आरोप इतना संक्षिप्त था कि उसे बुद्धिमत्तापूर्वक समझना संभव नहीं था और वह अपीलार्थी को अपना बचाव करने हेतु सामग्री प्रदान करने के लिए पर्याप्त रूप से निश्चित नहीं था। इसी कारण से 'मूल नियम 55' यह प्रावधान करता है, जैसा कि पहले बताया गया है, कि आरोप के साथ अभिकथनों का विवरण संलग्न होना चाहिए। अभिकथनों का विवरण प्रस्तुत करने का संपूर्ण उद्देश्य वे सभी आवश्यक विशिष्टताएँ और विवरण देना है जो बचाव पेश करने का उचित अवसर देने की आवश्यकता को पूरा करते हों। ... संपूर्ण कार्यवाही 'मूल नियम 55' की पूर्ण अवहेलना दर्शाती है, जहाँ तक कि यह लगभग अनिवार्य शर्तों में यह निर्धारित करता है कि आरोपों के साथ अभिकथनों का विवरण होना चाहिए। हमें इस बात में कोई संदेह नहीं है कि आरोपों के पूरी तरह से अस्पष्ट और अनिश्चित होने तथा भौतिक तथ्यों और विवरणों वाले अभिकथनों का विवरण उसे न दिए जाने के कारण अपीलार्थी को अपना बचाव करने के उचित और तर्कसंगत अवसर से वंचित किया गया था। ऐसी स्थिति में, केवल उपरोक्त कारण से ही, विचारण न्यायाधीश इस वाद को डिक्री करने में पूरी तरह से न्यायोचित थे।

(स्व-रेखांकित)

36. आगे बढ़ते हुए, अपीलार्थी ने यह आरोप लगाया था कि अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण करने की अनुमति नहीं दी गई थी। 1930 के नियमों का नियम 55 यह प्रावधान करता है कि आरोपित व्यक्ति द्वारा गवाहों से प्रति-परीक्षण की जा सकती है। यदि विभागीय फाइल को अभिलेख पर रखा गया होता, तो इस उप-मुद्दे के अधिक विस्तृत विश्लेषण में सुविधा होती। फिर भी, उपलब्ध सामग्री के आधार पर, प्रश्न यह बना रहता है कि क्या यह निर्धारित किया जा सकता है कि अपीलार्थी को अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण करने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था, या अपीलार्थी ने स्वयं उस अवसर का उपयोग न करने का विकल्प चुना था।
37. उत्तरदातओं के अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया कि अपीलार्थी ने जानबूझकर अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण न करने का विकल्प चुना था और उनका यह तर्क नहीं है कि प्रति-परीक्षण का अवसर नहीं दिया जा सकता था, विशेष रूप से इस तथ्य के आलोक में कि अभियोजन साक्षी-2 को अपीलार्थी द्वारा प्रति-परीक्षण के लिए उपलब्ध कराया गया था। हालाँकि, एकल न्यायाधीश के अवलोकनों से पता चलता है कि उत्तरदातओं ने दावा किया था कि अपीलार्थी की ओर से उक्त साक्षी से प्रति-परीक्षण करने के इरादे को व्यक्त करने वाला कोई अनुरोध या संकेत अभिलेख पर नहीं था। यह दर्शाता है कि उत्तरदातओं ने अभियोजन साक्षी-1 की प्रति-परीक्षण के मुद्दे पर अपना रुख बदल लिया है, जैसा कि एकल न्यायाधीश और इस न्यायालय के समक्ष उनकी दलीलों से परिलक्षित होता है।
38. इसके अलावा, इस न्यायालय के समक्ष मौजूद सामग्रियों के अवलोकन पर, संभाव्यता की प्रबलता अपीलार्थी के पक्ष में है कि उसे अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण करने के उसके अधिकार से वंचित किया गया था। उत्तरदातओं का यह दावा कि अपीलार्थी ने जानबूझकर अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण करने से परहेज किया, जबकि

उसने अभियोजन साक्षी-2 से प्रति-परीक्षण करने का अनुरोध किया था, तीन कारणों से अस्थिर हैं: प्रथम, उत्तरदातओं ने इस मुद्दे पर अपना रुख बदल लिया है; द्वितीय, कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति स्वेच्छा से प्रति-परीक्षण के अधिकार का त्याग नहीं करेगा, विशेष रूप से तब जब सात गवाहों की सूची में से गवाही देने वाले केवल दो गवाहों में अभियोजन साक्षी-1 शामिल था, और उसके विरुद्ध व्यक्तिगत प्रतिशोध के आरोप थे। और तृतीय, उत्तरदातओं ने कभी यह दावा नहीं किया कि प्रति-परीक्षण निर्धारित जाँच प्रक्रिया का हिस्सा नहीं थी या यह वैकल्पिक थी, या अपीलार्थी ने जाँच छोड़ दी थी या संबंधित तिथि पर उपस्थित होने में विफल रहा था।

39. इसके बाद, जाँच अधिकारी ने प्रति-परीक्षण के दौरान अभियोजन साक्षी-2 के उस बयान पर अविश्वास व्यक्त किया, जिसमें उसने कथित अपराधों में अपीलार्थी की संलिप्तता से स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया था और वह यह याद करने में विफल रहा था कि क्या ₹40,000/- (चालीस हजार रुपये) से संबंधित जब्ती सूची उसकी उपस्थिति में तैयार की गई थी। जाँच अधिकारी ने यह सुझाव दिया कि अभियोजन साक्षी-2 संभवतः अपीलार्थी द्वारा अनुचित रूप से प्रभावित या राजी किया गया होगा, और यह उल्लेख किया कि प्रति-परीक्षण, अभियोजन साक्षी-2 के मुख्य परीक्षण की तारीख से नौ (9) महीने के पर्याप्त विलंब के बाद हुई थी, जिसने पूर्व में अपीलार्थी की संलिप्तता की ओर संकेत किया था।

40. इस उप-मुद्दे में और गहराई से जाने से पहले, एक बार फिर अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित विभागीय फाइल को रोके रखने के तथ्य पर वापस लौटना आवश्यक है, जिसके कारण अपीलार्थी द्वारा प्रति-परीक्षण के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा अभियोजन साक्षी-2 को प्रस्तुत करने में हुए विलंब के कारण का निर्धारण नहीं हो सका। किसी भी स्थिति में, क्या इस तरह के लंबे अंतराल के लिए अपीलार्थी को उत्तरदायी ठहराया

जा सकता है? संभवतः नहीं, क्योंकि साक्षी को प्रस्तुत करना अभियोजन पक्ष की जिम्मेदारी है। इसके अलावा, विभागीय फाइल की अनुपस्थिति में, हम निर्णायक रूप से इस विलंब का श्रेय अपीलार्थी को भी नहीं दे सकते। फलस्वरूप, हमारे समक्ष मौजूद सीमित तथ्यों के आधार पर, इस चूक के लिए अभियोजन पक्ष को ही जिम्मेदार माना जाना चाहिए।

41. बहरहाल, हमारा यह विचार है कि केवल प्रति-परीक्षण के संचालन में हुए विलंब के आधार पर अभियोजन साक्षी-2 की प्रति-परीक्षण को अविश्वसनीय मानकर खारिज कर देना एक उचित निष्कर्ष नहीं होगा। अभियोजन साक्षी-2 ने आपराधिक कार्यवाही में भी अपीलार्थी की संलिप्तता से इनकार किया था और जाँच के दौरान अपनी प्रति-परीक्षण में उसने स्पष्ट किया था कि उसने पूर्व में विभाग के भीतर के व्यक्तियों से सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अपीलार्थी के नाम का खुलासा किया था।
42. हमारा यह मानना है कि जाँच अधिकारी ने जाँच संचालित करते समय जो दृष्टिकोण अपनाया, वह न्यायोचित नहीं था। उनके द्वारा निष्कर्ष किसी *स्वेच्छाचार* या अटकलों और अनुमानों के आधार पर नहीं, बल्कि कानूनी साक्ष्य के आधार पर दिए जाने चाहिए थे। इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने **भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल**²⁹ में माननीय न्यायमूर्ति पी.बी. गजेंद्रगडकर के माध्यम से यह स्पष्ट किया था कि भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाने के उद्देश्य को पूरा करते समय, घरेलू जाँच में भी केवल संदेह को प्रमाण का स्थान नहीं लेने देना चाहिए। यद्यपि न्यायालयों में आपराधिक मुकदमों को नियंत्रित करने वाले तकनीकी नियम आवश्यक रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू नहीं हो सकते हैं, फिर भी यह सिद्धांत कि 'दोषी को दंडित करते समय इस बात का सूक्ष्म ध्यान रखा जाना चाहिए कि किसी निर्दोष को दंडित न किया जाए', नियमित आपराधिक मुकदमों के समान ही वैधानिक नियमों

के तहत आयोजित अनुशासनात्मक जाँच पर भी लागू होता है। इस प्रकार, यह दशकों से कानून की सुस्थापित स्थिति रही है और इस कानून को ध्यान में रखते हुए, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि जिस कारण से जाँच अधिकारी ने प्रति-परीक्षण के दौरान अभियोजन साक्षी-2 के बयान पर संदेह किया, वह कारण तब तक नहीं दिया जा सकता था जब तक कि पहले इस विलंब के लिए अपीलार्थी को जिम्मेदार ठहराने वाला निष्कर्ष दर्ज न कर लिया गया हो।

43. इस मोड़ पर, यह रेखांकित करना और भी अनिवार्य है कि अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप-पत्र सूचक की लिखित शिकायत के आधार पर जारी किया गया था। कानून इस संबंध में भी स्पष्ट है कि केवल दस्तावेज़ पेश कर देना ही प्रमाण नहीं माना जाता। यदि आरोप-पत्र किसी लिखित शिकायत के आधार पर जारी किया गया है, तो उसके लेखक/शिकायतकर्ता को प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। इस न्यायालय का **बरेली विद्युत आपूर्ति कंपनी लिमिटेड बनाम वर्कमैन एवं अन्य³⁰** का निर्णय इस सिद्धांत के लिए एक प्रामाणिक आधार है। विशेष रूप से, वर्तमान मामले में, सूचक/शिकायतकर्ता का परीक्षण नहीं किया गया था। हमारा मानना है कि यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक और बड़ी और स्पष्ट त्रुटि है।
44. हमारे पास उपलब्ध सामग्रियों की समीक्षा करने और आरोप-पत्र जारी करने में उपर्युक्त विसंगतियों तथा प्रक्रियात्मक चूकों पर विचार करने के बाद (जिनमें से किसी के लिए भी अपीलार्थी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता), और अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित विभागीय फाइल की अनुपस्थिति के आलोक में, हम संदेह के किसी भी घेरे से परे यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य हैं कि अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने में सम्यक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, जिससे उसकी बर्खास्तगी न्यायोचित नहीं रह जाती।

45. यद्यपि हम खंडपीठ के इस विचार से सहमत हैं कि एकल न्यायाधीश ने काफी हद तक अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया था, तथापि अपनी ओर से खंडपीठ निर्णय लेने की प्रक्रिया में व्याप्त उपर्युक्त दोषों पर विचार करने में विफल रही। इसे अनजाने में हुई चूक या अनदेखी कहा जा सकता है; लेकिन, चाहे जो भी हो, हमारी राय में ऐसी चूक या अनदेखी के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है।

मुद्दा संख्या 2

46. पहले मुद्दे पर उपरोक्त चर्चा उत्तरदाताओं की नियति तय कर देती है। हालाँकि, चूंकि इस मुद्दे के संबंध में भी तर्क दिए गए थे, इसलिए हम इसका संक्षेप में उत्तर देने का प्रस्ताव रखते हैं।
47. हालांकि आपराधिक मामले में दोषमुक्ति होने मात्र से आरोपी स्वतः ही अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद लोक सेवा से अपनी बर्खास्तगी के आदेश को रद्द कराने का हकदार नहीं हो जाता, लेकिन यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जब विभागीय जाँच और आपराधिक कार्यवाही दोनों में आरोप, साक्ष्य, गवाह और परिस्थितियाँ एक समान या काफी हद तक समान हों, तो स्थिति एक अलग संदर्भ ग्रहण कर लेती है। ऐसे मामलों में, अनुशासनात्मक कार्यवाही के निष्कर्षों को बरकरार रखना अन्यायपूर्ण, अनुचित और दमनकारी होगा। यह **जी. एम. टैंक** (उपरोक्त) के निर्णय द्वारा तय की गई स्थिति है, जिसे हाल ही के एक निर्णय **राम लाल बनाम राजस्थान राज्य**³¹ द्वारा पुनः पुष्ट किया गया है।
48. विभागीय और आपराधिक कार्यवाही के बीच आरोपों, साक्ष्यों, गवाहों और परिस्थितियों की समानता की डिग्री का आकलन करने के लिए, उन सामग्रियों की समीक्षा करना वास्तव में महत्वपूर्ण है जो न्यायालय के समक्ष रखी जाती हैं जहाँ ऐसा मुद्दा उठता

है। हालाँकि, हमें खेद है कि विभागीय फ़ाइल की अनुपस्थिति ने हमें इसे देखने में असमर्थ कर दिया है।

49. उपरोक्त के बावजूद, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के साधारण पठन से केवल यही पता चलता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोप संख्या 1, आपराधिक कार्यवाही के अभिकथनों से काफी मिलता-जुलता था। वास्तव में, अनुशासनात्मक कार्यवाही सूचक की लिखित शिकायत के आधार पर ही शुरू की गई थी।
50. अपीलार्थी को दोषमुक्त करने वाले निर्णय से यह पता चलता है कि अभियोजन पक्ष "संदेह से परे अपने मामले को साबित करने में बुरी तरह विफल रहा" क्योंकि सूचक और अभियोजन साक्षी-2 दोनों ने न्यायालय में अपीलार्थी को पहचानने से इनकार कर दिया था। यह चर्चा इस बात की पुष्टि करती है कि अपीलार्थी की दोषमुक्ति केवल तकनीकी आधारों पर आधारित नहीं थी। **राम लाल** (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने यह व्यवस्था दी थी कि "संदेह का लाभ" या "ससम्मान दोषमुक्त" जैसे शब्दों को मात्र औपचारिकताओं के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। न्यायालय का कर्तव्य निर्णय की शब्दावली के बजाय उसके सार पर ध्यान केंद्रित करना है।
51. इसके अतिरिक्त, यह भी उल्लेखनीय है कि जाँच के दौरान अभियोजन साक्षी-2 ने प्रति-परीक्षण के समय अपीलार्थी को पहचानने से इनकार कर दिया था, और अनुशासनात्मक कार्यवाही में सूचक को गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया था। यह स्थिति आपराधिक और अनुशासनात्मक दोनों कार्यवाहियों की परिस्थितियों के बीच एक प्रकार की समानता उत्पन्न करती है।
52. इसके अतिरिक्त, प्रतिकूल निष्कर्ष के सिद्धांत से अपीलार्थी का पक्ष और मजबूत होता है। यह तर्कसंगत रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तरदातओं ने विभागीय फाइल की स्कैन की हुई कॉपी को जानबूझकर रोके रखा, जो हमारे लिए यह आकलन

करने हेतु आवश्यक थी कि क्या आपराधिक और विभागीय दोनों कार्यवाहियों में आरोप, गवाह, साक्ष्य और परिस्थितियाँ काफी हद तक समान या एक जैसी थीं, और संभवतः ऐसा संभावित प्रतिकूल परिणामों की चिंता के कारण किया गया।

53. पूर्ववर्ती चर्चा और निकाले जाने योग्य प्रतिकूल अनुमान के आलोक में, हमारा यह मानना है कि आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्त होने के बाद, अपीलार्थी को आरोप संख्या 1 का दोषी पाए जाने का निष्कर्ष बरकरार नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि उस कार्यवाही में काफी हद तक समान या एक जैसे आरोप, साक्ष्य, गवाह और परिस्थितियाँ शामिल थीं।

मुद्दा संख्या 3

54. अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद अपीलार्थी की बर्खास्तगी के संबंध में खंडपीठ और एकल न्यायाधीश के विचारों में भिन्नता थी। जहाँ एकल न्यायाधीश ने जाँच प्रतिवेदन को दोषपूर्ण माना क्योंकि उसमें अपनाई गई प्रक्रियाएँ गैर-कानूनी थीं और निष्कर्ष अस्थिर थे, वहीं खंडपीठ ने "विभागीय कार्यवाही की मूल फाइल" की समीक्षा करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि इसमें कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता या प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन नहीं हुआ था; और, इसलिए, यह माना कि एकल न्यायाधीश द्वारा जाँच अधिकारी के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना—विशेष रूप से अपने रिट क्षेत्राधिकार के तहत उन निष्कर्षों के गुण-दोष का मूल्यांकन करना—अनुचित था।
55. यह कानून सुस्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय उन शक्तियों का प्रयोग नहीं करता है जो एक अपीलीय न्यायालय को उपलब्ध होती हैं। इसमें केवल निर्णय लेने की प्रक्रिया ही जांच के दायरे में आती है। इसके बावजूद, उच्च न्यायालय कानून की त्रुटियों या प्रक्रियात्मक अनियमितताओं, यदि कोई हों, को सुधार सकते हैं जो न्याय की स्पष्ट

विफलता या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का कारण बनती हैं। यह कानून भी भली-भांति स्थापित है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में दोष सिद्धि के मानक आपराधिक कार्यवाही पर लागू होने वाले मानकों से भिन्न होते हैं। हालाँकि, यह भी उतना ही सत्य है कि विभागीय प्राधिकारी इसमें शामिल पक्षों को निष्पक्ष अवसर प्रदान करने के लिए बाध्य हैं, और निष्पक्ष अवसर क्या होता है, इसका निर्धारण प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए, जैसा कि *मैसूर राज्य बनाम शिवबसप्पा शिवप्पा मकरपुर*³² में निर्धारित किया गया है।

56. यह भली-भांति स्थापित है कि दंडात्मक या प्रतिकूल परिणामों वाली कोई भी कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए। प्रति-परीक्षण के अवसर की कमी के आधार पर प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन की शिकायत को बनाए रखने के लिए, उल्लंघन का आरोप लगाने वाले पक्ष को यह दिखाना होगा कि इससे उसे प्रतिकूल प्रभाव कारित हुआ है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा *एल.के. त्रिपाठी बनाम भारतीय स्टेट बैंक*³³ में पुष्ट किया गया है।
57. इस न्यायालय की पूर्ववर्ती कंडिकों के निर्णयों के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण के अधिकार से इनकार करने से अपीलार्थी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, जिसे तीन कारणों से प्रति-परीक्षण का अवसर दिया जाना चाहिए था: प्रथम, यदि अभियोजन साक्षी-1 से प्रति-परीक्षण की गई होती, विशेष रूप से व्यक्तिगत विद्वेष के अपीलार्थी के दावे के संबंध में, तो यह प्रशंसनीय है कि ऐसी प्रति-परीक्षण जाँच अधिकारी के निष्कर्षों को प्रभावित कर सकती थी, जिससे संभावित रूप से एक अलग निष्कर्ष निकल सकता था; द्वितीय, जाँच अधिकारी ने अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों के प्रमाण की पुष्टि के लिए अभियोजन साक्षी-1 की गवाही पर

32 ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 375

33 ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 273

महत्वपूर्ण भरोसा जताया था, जिसे प्रति-परीक्षण का मौका मिलने पर ध्वस्त किया जा सकता था; और तृतीय, अभियोजन साक्षी-2, जो कि एकमात्र अन्य गवाह था, ने प्रति-परीक्षण के दौरान अपीलार्थी को पहचानने से इनकार कर दिया था।

58. इसके अतिरिक्त, हम यह पाते हैं कि जाँच अधिकारी और उत्तरदाताओं संख्या 5, 4 और 2 ने मामले के साक्ष्यों और गुण-दोषों से इतर बाहरी कारकों पर विचार करके एक निष्पक्ष निष्कर्ष तक पहुँचने की अपनी क्षमता से समझौता किया है, अर्थात्, इस तथ्य पर विचार करके कि आरोप संख्या 2 को आरोप-पत्र का हिस्सा बनाया गया था, जबकि अपीलार्थी को इसके लिए पूर्व में ही दंडित किया जा चुका था।
59. साथ ही, जाँच अधिकारी और उत्तरदाताओं संख्या 5, 4 और 2 ने इस बात की अनदेखी की है कि सूचक, जिसकी शिकायत पर अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू हुई थी, उसे गवाह नहीं बनाया गया था। अभियोजन साक्षी-1 और अभियोजन साक्षी-2 के बयान सूचक की लिखित शिकायत की सामग्री को स्थापित करने के एक विफल प्रयास को दर्शाते हैं, क्योंकि पूर्व (अभियोजन साक्षी-1) से प्रति-परीक्षण नहीं की गई थी, और उत्तरवर्ती (अभियोजन साक्षी-2) प्रति-परीक्षण के दौरान अपीलार्थी की पहचान करने में विफल रहा था। इसके अतिरिक्त, एक हितबद्ध साक्षी के रूप में अभियोजन साक्षी-1 के संभावित पूर्वाग्रह पर उचित विचार या महत्व नहीं दिया गया था।
60. आरोप संख्या 2 के संबंध में, यद्यपि दोषसिद्धि के संबंध में पिछला निष्कर्ष बाद के आरोप-पत्र का हिस्सा बन सकता है ताकि वर्धित दंड दिया जा सके, लेकिन कानून के अनुसार अनुशासनात्मक प्राधिकारी को आरोपित कर्मचारी को ऐसी मंशा का पर्याप्त नोटिस देना आवश्यक है, ताकि दंड के प्रश्न पर निर्णय लेते समय उसे ध्यान में रखा जा सके। इस संबंध में *मैसूर राज्य बनाम के. मांचे गौड़ा*³⁴ और *निकोलस पीरामल*

*इंडिया लिमिटेड बनाम हरि सिंह*³⁵ के निर्णयों का उपयोगी संदर्भ लिया जा सकता है। इसके विपरीत अपीलार्थी के तर्क को खारिज किया जाता है। चूँकि, अनुशासनात्मक कार्यवाही में असाध्य दोष पाए गए हैं, इसलिए दंड का निर्णय लेने हेतु अपीलार्थी के आचरण का मूल्यांकन वास्तव में अब प्रासंगिक नहीं रह जाता है।

61. आरोप संख्या 3 के संबंध में, आरोप में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि अपीलार्थी को 8 अगस्त, 1988 को गिरफ्तार किया गया था। फलस्वरूप, यह अकल्पनीय है कि अपीलार्थी अपने अर्जित अवकाश की समाप्ति के बाद उसी तारीख को अपने कर्तव्यों पर पुनः उपस्थित हो सकता था, विशेष रूप से तब जब उत्तरदाताओं ने अपीलार्थी की गिरफ्तारी की तारीख के संबंध में कोई आपत्ति नहीं जताई है।
62. अंत में, अब केवल आरोप संख्या 4 शेष रह जाता है। गिरफ्तार होने के बाद, अपीलार्थी से यह उम्मीद करना तर्कसंगत नहीं था कि वह जमानत मिलने तक अपनी गिरफ्तारी के तथ्य की सूचना दे। अपीलार्थी ने दावा किया था कि उसने अभियोजन साक्षी-1 से अपनी गिरफ्तारी की सूचना अपराध अनुसंधान विभाग अधिकारियों को देने का अनुरोध किया था, लेकिन व्यक्तिगत विद्वेष के कारण अभियोजन साक्षी-1 ऐसा करने में विफल रहा। अभिलेख पर किसी भी विपरीत सामग्री की अनुपस्थिति में, यह संभावित प्रतीत होता है।
63. तदनुसार, यह न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालता है कि अपीलार्थी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही निष्पक्षता के सिद्धांतों के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के अनुरूप संचालित नहीं की गई थी, जिससे उसके बचाव पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अतः, आक्षेपित आदेश कायम रखने योग्य नहीं है।

मुद्दा संख्या 4

64. अब, हमें उस राहत पर विचार करने की आवश्यकता है जो अपीलार्थी को दी जानी चाहिए।
65. उच्च न्यायालय की खंडपीठ के 16 नवंबर, 2016 के आक्षेपित आदेश के साथ-साथ उत्तरदाता संख्या 5, 4 और 2 द्वारा क्रमशः 21 जून, 1996, 14 जुलाई, 1997 और 6 अगस्त, 2003 को जारी किए गए आदेशों को अपास्त किया जाता है।
66. एकल न्यायाधीश द्वारा पारित 16 जुलाई, 2013 के आदेश को आंशिक रूप से बरकरार रखा जाता है। हालांकि, पूरे पिछले वेतन के भुगतान के निर्देश को अपास्त किया जाता है।
67. आगे की राहत देने से पहले, यह ध्यान देना उचित है कि आरोप-पत्र को जन्म देने वाली कथित घटना की तारीख 7 अगस्त, 1988 है, और अपीलार्थी को 21 जून, 1996 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। उपलब्ध अभिलेख के आधार पर, 2004 में जब अपीलार्थी ने एकल न्यायाधीश का दरवाजा खटखटाया था, तब उसकी आयु 53 वर्ष थी। इसलिए, 2025 में उसकी आयु लगभग 74 वर्ष और 1996 में लगभग 45 वर्ष रही होगी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि अपनी बर्खास्तगी के समय उसकी लगभग 14/15 (चौदह/पंद्रह) वर्ष की सेवा शेष थी। सेवा में पुनर्वहाली की राहत अब नहीं दी जा सकती। अब हमें केवल उस मौद्रिक राहत की मात्रा पर विचार करना है जो न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगी।
68. गंभीरतापूर्वक विचार करने के उपरांत, हमारा यह स्पष्ट मत है कि यदि हम उत्तरदाताओं को आज की तारीख से 3 (तीन) महीने के भीतर अपीलार्थी को सभी सेवा और सेवानिवृत्ति लाभों सहित ₹ 30 लाख (तीस लाख रुपये) के एकमुश्त मुआवजे के

भुगतान का निर्देश देते हैं, तो इससे न्याय के उद्देश्य पर्याप्त रूप से पूरे हो जाएंगे।
तदनुसार आदेश दिया जाता है।

निष्कर्ष

69. तदनुसार, अपील को निस्तारित किया जाता है।
70. अपीलार्थी ₹ 5 लाख (पाँच लाख रुपये) के निर्धारित वाद-व्यय का हकदार होगा, जिसका भुगतान उत्तरदाताओं द्वारा उक्त अवधि के भीतर किया जाएगा।

मामले का परिणाम: अपील निस्तारित।

† निर्णय-सार लेखन: अंकित ज्ञान

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।